हो जाना कैसे सम्भव है, परन्तु ऐसी चिन्ता वास्तव में निरर्थक है।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।।६७।।

इदम=यह; **ते**=तुझे; **न**=न (तो); **अतपस्काय**=तपरहित (अजितेन्द्रिय) पुरुष को; **न**=न; **अभक्ताय**=अभक्त को, **कदाचन**=कभी; **न च**=(और) न ही; **अशुश्रूषवे**= सुनने की इच्छा से रहित मनुष्य को; **वाच्यम्**=कहना चाहिए; **न च**=और नहीं; **माम्**= मुझ से; **यः**=जो; **अभ्यसूयति**=द्वेष करता है।

अनुवाद

इस परम गोपनीय ज्ञान को न तो कभी तपरहित (अजितेन्द्रिय) पुरुष को सुनाना चाहिए और न अभक्त, सुनने की इच्छा से रहित अथवा भक्तियोग में न लगे हुए मनुष्य से ही कहना चाहिए एवं जो मुझ से द्वेष करता हो, उसे भी नहीं सुनाना चाहिए।।६७।।

तात्पर्य

जिन मनुष्यों ने तप का आचरण नहीं किया हो, जिन्होंने कभी कृष्णभावनाभवित भक्तियोग का साधन न किया हो, जिन्होंने कभी शुद्धभक्त की सेवा नहीं की हो और जो श्रीकृष्ण को केवल एक ऐतिहासिक पुरुष मानते हों या उनकी महिमा से द्वेष करते हों, उनके प्रति तो विशेषकर यह परम गोपनीय (रहस्यमय) ज्ञान नहीं कहना चाहिए। कभी-कभी देखा जाता है कि आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य भी, जो श्रीकृष्ण से द्वेष करते हैं और उन्हें प्रतिकूल भाव से भजते हैं, धन-प्राप्ति के लिए भगवद्गीता को अपने ढंग से समझाने का व्यवसाय बना लेते हैं। परन्तु यदि कोई यथार्थ में श्रीकृष्ण को तत्त्व से जानने का अभिलाषी हो, तो भगवद्गीता की इन व्याख्याओं से बचा रहे। वास्तव में भगवद्गीता के प्रयोजन को अजितेन्द्रिय व्यक्ति नहीं जान सकते। वैदिक शास्त्रों के नियमों का अनुसरण करने वाला जितेन्द्रिय पुरुष भी भक्त हुए बिना श्रीकृष्ण को तत्त्व से नहीं जान सकता। जो अपने को भक्त कहता हो, परन्तु कृष्णभावनाभावित कर्म के परायण न हो, वह भी श्रीकृष्ण को नहीं समझ सकता। ऐसे अनेक मनुष्य हैं, जो श्रीकृष्ण से द्वेष करते हैं, क्योंकि उन्होंने गीता में स्वयं कहा है कि वे परब्रह्म हैं, उनके समान अथवा उनसे अधिक दूसरा कोई नहीं है। इस कोटि के मनुष्य गीता के अधिकारी नहीं हैं; उन्हें यह न सुनाये, क्योंकि वे इसे समझ नहीं सकते। अश्रद्धालुओं के लिए भगवद्गीता अथवा श्रीकृष्ण के तत्त्व को जानने की कुछ भी संभावना नहीं है। आचार्यचरण शुद्धभक्त के मुखपद्म से श्रीकृष्ण के तत्त्व को जाने बिना भगवद्गीता पर टीका करने का दुस्साहस कोई न करे।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।।६८।।